ओरियन्टल अरोमा रसायनिक उद्योग लिमिटेड

बनाम

गुजरात औद्यौगिक विकास कोरपोरेशन और अन्य

(सिविल अपील संख्या 2075 ऑफ 2010)

फरवरी 26, 2010

[जी. एस. सिंघवी और अशोक कुमार गांगुली, जे. जे.]

परिसीमा अधिनियम, 1963-धारा 5- देरी की माफ़ी -सिविल मुकदमे में फैसले और डिक्री के खिलाफ सरकारी निगम द्वारा अपील- साथ ही 4 साल की देरी की माफ़ी के लिए आवेदन-डिवीजन बेंच द्वारा अनुमति का औचित्य माना गया, उचित नहीं - सरकारी निगम के कानून विभाग ने साफ हाथों से उच्च न्यायालय का दरवाजा नहीं खटखटाया - उच्च न्यायालय ने न्यायिक रूप से स्वीकृत मापदंडों की अनदेखी करते हुए अपील दायर करने में चार साल से अधिक की देरी को माफ करके गंभीर गलती की। धारा 5 के तहत विवेक के प्रयोग के लिए मानदंड - इस प्रकार -उच्च न्यायालय के आदेश को रद्द कर दिया गया - देरी की माफी के लिए आवेदन खारिज कर दिया गया - सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 आदेश 41 नियम 3 ए

विचार के लिए जो प्रश्न उठा वह यह था कि क्या विशेष सिविल वाद में सिविल जज द्वारा पारित निर्णय और डिक्री के खिलाफ उत्तरदाताओं द्वारा अपील दायर करने में चार साल से अधिक की देरी को माफ करना उच्च न्यायालय की डिवीजन बेंच के लिए उचित था।

कोर्ट ने अपील स्वीकार करते हुए अभिनिर्धारित किया-

1.1 परिसीमा का नियम सार्वजनिक नीति पर आधारित है। विधायिका पार्टियों के अधिकारों को नष्ट करने के उद्देश्य के साथ परिसीमा निर्धारित नहीं करती हैं। लेकिन सुनिश्चित करें कि वे टाल-मटोल की रणनीति का सहारा न लें और बिना देर किये उपाय प्राप्त करे। विचार यह है कि हर कानूनी उपाय विधायिका द्वारा निर्धारित अवधि तक जीवित रखा जाना चाहिए। इसे अलग ढंग से कहें तो परिसीमा का कानून वह अवधि निर्धारित करता है जिसके भीतर कानून क्षति का कानूनी उपचार का लाभ उठाया जा सकता है। साथ ही अदालतें को यदि देरी हो तो माफ करने की शक्ति दी गई है, यदि निर्धारित समय के भीतर उपचार का लाभ न उठाने के लिए पर्याप्त कारण दिखाया गया है। अभिव्यक्ति - "पर्याप्त कारण" परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 5 और इसी तरह के अन्य क़ानून न्यायालय को सक्षम करने के लिए पर्याप्त लोचदार हैं ताकि अदालतें कानून को सार्थक तरीके से लागू करें जो न्याय के उद्देश्य को पूरा करता है। हालाँकिए कोई सख्त नियम नहीं है जो विलम्ब के लिए क्षमा के आवेदनों से निपटने में

निर्धारित किया जा सकता है। इस न्यायालय ने देरी को माफ करने में उदार दृष्टिकोण अपनाने की उचित रूप से पैरवी की है। जहां देरी हो वहां छोटी अवधि और सख्त दृष्टिकोण असंयमित है। [पैरा 8] [1184-सी-ई]

कलेक्टर, भूमि अधिग्रहण, अनंतनाग बनाम एमएसटी। कातिजी

(1987) 2 एससीसी 107; एन. बालकृष्णन बनाम एम. कृष्णमूर्ति

(1998) 7 एससीसी 123; वेदबाई बनाम शांताराम बाबूराव पाटिल

(2001) 9 सेकंड 106, पर निर्भर।

1.2. राज्य और उसकी एजेंसियों की ओर से दायर देरी की माफी के लिए आवेदनों से निपटने मेंध् इस न्यायालय ने इस बात पर जोर देते हुए कहा कि यह महत्वपूर्ण है (निर्णय लेने के लिए समान मापदण्ड लागू किया जाना चाहिए) निजी व्यक्तियों एवं राज्य द्वारा विलंब क्षमा हेतु आवेदन दाखिल किये गये देखा गया कि बाद के मामले में कुछ अक्षांश की अनुमति नहीं है क्योंकि राज्य समुदाय के सामूहिक कारण का प्रतिनिधित्व करता है और निर्णय अधिकारियों एवं एजेंसियों द्वारा लिए जाते हैं। फाइलों को आगे बढ़ाने की धीमी गति और बोझिल प्रक्रिया एक टेबल से दूसरी टेबल पर जाने में काफी समय लगता है। [पैरा 8] [1184-एफ-एच; 1185-ए]

जी. रामेगौड़ा बनाम विशेष भूमि अधिग्रहण अधिकारी **(1988) 2 एससीसी 142;** हरियाणा राज्य बनाम चंद्र मणि **(1996) 3 एससीसी 132;** यूपी राज्यण् बनाम हरीश चंद्र **(1996) 9 एससीसी 309;** राज्य बिहार बनाम रतन लाल साहू **(1996) 10 एससीसी 635;** नागालैंड राज्य बनाम लिपोक एओ **(2005) 3 एससीसी 752;** राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र) दिल्ली बनाम अहमद जान **(2008) 14 एससीसी 582,** पर आधारित।

2.1. आक्षेपित आदेश को पढ़ने से यह स्पष्ट हो जाता है कि उच्च न्यायालय ने उत्तरदाताओं द्वारा दायर देरी की माफी के लिए आवेदन का एक संक्षिप्त संदर्भ दिया था, लेकिन उसमें निहित कथनों और अपीलकर्ता की ओर से दायर उत्तर पर ध्यान दिए बिना इसकी अनुमति दे दी। उच्च न्यायालय ने ग़लती से यह मान लिया कि देरी 1067 दिनों की थी हालाँकि, वास्तव में अपील चार साल से अधिक समय के बाद दायर की गई थी। उच्च न्यायालय द्वारा बनाई गई एक और गलत धारणा यह थी कि अपीलकर्ता ने देरी की माफी के लिए आवेदन में निहित कथनों का खंडन करने के लिए उत्तर दाखिल नहीं किया था। इस न्यायालय के लिए आक्षेपित आदेश में पहली त्रुटि को नजरअंदाज करना संभव हो सकता है क्योंकि आवेदन के पैराग्राफ 2 और 3 में अंक और शब्द 4 वर्ष और 28 को हटाकर और उसे अंक 1067 के साथ प्रतिस्थापित करके, उत्तरदाताओं ने यह विश्वास करके उच्च न्यायालय को गुमराह किया कि देरी केवल 1067 दिनों की थी, लेकिन यह समझ पाना संभव नहीं है कि उच्च

न्यायालय की खंडपीठ ने उस विस्तृत उत्तर पर विचार करना क्यों छोड़ दिया जो अपीलकर्ता की ओर से विलम्ब क्षमा प्रार्थना पत्र को चुनौती देने के लिए दायर किया गया था। इसके बावजूद, आक्षेपित आदेश को रद्द कर दिया गया हो सकता है और परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के तहत उत्तरदाताओं द्वारा दायर आवेदन के नए सिरे से निपटान के लिए मामले को उच्च न्यायालय में भेज दिया गया हो, लेकिन, उस प्रक्रिया को अपनाना उचित नहीं है क्योंकि उत्तरदाता साफ़ हाथों से उच्च न्यायालय नहीं आये। [पैरा 10] [1185-ए-एच; 1186-ए]

2.2. यह स्पष्ट है कि प्रतिवादी नंबर 1 का कानून विभाग पहले के साथ-साथ दूसरे मुकदमे की कार्यवाही से भी अच्छी तरह वाकिफ था, पहले मामले में आरएम को एक वकील के रूप में नियुक्त किया गया था और दूसरे मामले में बीआर को प्रतिवादियों की ओर से उपस्थित होने का निर्देश दिया गया था, लेकिन किसी भी अधिकारी लिखित कथन ने दाखिल करने तथा मामले की तैयारी के उद्देश्य से किसी भी वकील से व्यक्तिगत रूप से संपर्क नहीं किया था और किसी ने भी सुनवाई की किसी भी तारीख पर ट्रायल कोर्ट के सामने उपस्थित होने की जहमत नहीं उठाई। यह आश्चर्य की बात है कि भले ही महाप्रबंधक (कानून) रैंक के एक अधिकारी ने आरएम को मई 2001 में ही उपस्थित होने और वकालत दाखिल करने के निर्देश जारी किए थे और प्रबंधक (कानून) ने इसी महीने बीआर एडवोकेट को वकालत दी थी, मई 2005 में, देरी की माफी के लिए दायर आवेदन में

उत्तरदाताओं ने साहसपूर्वक कहा कि कानून विभाग को जनवरी / फरवरी 2008 के महीने में ही एकपक्षीय डिक्री के बारे में पता चला। उत्तरदाताओं ने यहां तक सुझाव दिया कि पार्टियों ने निगम के किसी कर्मचारी के साथ व्यवस्था की होगी या हाथ मिलाया होगा और वह शायद यही कारण है कि अधिवक्ताओं को नियुक्त करने के बादए किसी ने भी लिखित कथन दाखिल करने और उचित निर्देश देने के उद्देश्य से उनसे संपर्क नहीं किया, जिसके परिणामस्वरूप एक पक्षीय आदेश पारित हो गया। उपरोक्त कथन न केवल गलत है, बल्कि प्रथम दृष्टया झुठा है और उच्च न्यायालय ने परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के तहत विवेक के प्रयोग के लिए न्यायिक रूप से स्वीकृत मापदंडों की अनदेखी करते हुए अपील दायर करने में चार साल से अधिक की देरी को माफ करके गंभीर त्रुटि की है। [पैरा 13] [1187-जी-एच; 1188-ए]

2.3. उच्च न्यायालय के आक्षेपित आदेश को रद्द कर दिया गया है और उत्तरदाताओं द्वारा दायर देरी की माफी के लिए आवेदन खारिज कर दिया गया है। परिणामस्वरूपए निर्णय और डिक्री दिनांक 30.10.2004 के खिलाफ उत्तरदाताओं द्वारा दायर की गई अपील समय से बाधित होने के कारण खारिज कर दी जाएगी। तथापि, यह स्पष्ट किया जाता है कि हस्तगत अपील का निपटान प्रतिवादी नंबर 1 के उच्च पदाधिकारियों को मामले की गहन जांच करने की जिम्मेदारी से मुक्त नहीं करेगा ताकि दोषी अधिकारियों / कर्मचारियों की जवाबदेही तय की जा सके और नुकसान

यदि कोई हो, जो उत्तरदाता नं. 1 को हुआ हो तो प्राकृतिक न्याय के नियमों का पालन करने के बाद उनसे वसूल किया जावे। [पैरा 14] [1188-8-सी

बिहार राज्य और अन्य बनाम कमलेश्वर प्रसाद सिंह और अन्य **2000 एआईआर एससी 2388;** विशेष तहसीलदार, भूमि अधिग्रहण, केरल बनाम के. वी. अयीसुम्मा एआईआर **1996 एससी 2750;** पंजाब लघु उद्योग और निर्यात निगम लिमिटेड और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य **1995 सप्लीमेन्ट्री (4) एससीसी 681;** पी. के. रामचन्द्रन बनाम केरल राज्य और अन्य **(1997) 7 एससीसी 566,** संदर्भित।

केस कानून संदर्भ;

2000 एआईआर एससी 2388	संदर्भित	पैरा 5 में
एआईआर 1996 एससी 2750	संदर्भित	पैरा 5 में
1995 सप्लण् (4) एससीसी 681	संदर्भित	पैरा 5 में
(1997) 1 सेकंड 566	संदर्भित	पैरा 5 में
(1987) 2 सेकंड 101	निर्भर	पैरा 8 पर
(1998) 1 सेकंड 123	निर्भर	पैरा 8 पर
(2001) 9 सेकंड 106	भरोसा किया	पैरा 8 पर

(1988) 2 सेकंड 142	निर्भर	पैरा 8 पर
(1996) 3 सेकंड 132	निर्भर	पैरा 8 पर
(1996) 9 सेकंड 309	निर्भर	पैरा 8 पर
(1996) 10 एससीसी 635	निर्भर	पैरा 8 पर
(2005) 3 एससीसी 752	आधारित	पैरा 8 पर
(2008) 14 एससीसी 582	निर्भर	पैरा 8 पर

सिविल अपीलीय क्षेत्राधिकार 2010 की सिविल अपील संख्या 2075

अहमदाबाद में गुजरात के उच्च न्यायालय के अपील नं. 4180/2008 मे पारित निर्णय और आदेश दिनांक 25.03.2009 दिनांकित मे।

एल. एन. राव, निखिल गोयल, नवीन गोयल, मार्सोक बफाकी, शीला गोयल अपीलकर्ता की ओर से।

अनिप सचथे, मोहित पॉल, शगुन मट्टा, शेरिन डेनियल उत्तरदाताओं के लिए।

न्यायालय द्वारा निर्णय अभिनिर्धारित किया गया।

जी. एस. सिंघवी, जे. 1. अनुमति स्वीकार की

2. क्या गुजरात उच्च न्यायालय की डिवीजन बेंच द्वारा सिविल जज (सीनियर डिवीजन) गांधीनगर (इसके बाद इसे विचारण न्यायालय कहा जाएगा) द्वारा (2001 के विशेष सिविल सूट संख्या 32 में) पारित 30.10.2004 के फैसले और डिक्री के खिलाफ उत्तरदाताओं द्वारा अपील दायर करने में चार साल से अधिक की देरी को माफ करना उचित था। जो इस अपील में विचार के लिए उठता है।

3. अपीलकर्ता को लाइसेंस दिनांक 2.4.1976 के समझौते में शामिल नियमों और शर्तों के अधीन अंकलेश्वर में एक औद्योगिक इकाई स्थापित करने के लिए भूमि का एक टुकड़ा आवंटित किया गया था, जिसमें अन्य बातों के अलावा, अपीलकर्ता द्वारा पानी की निर्दिष्ट मात्रा की खपत के लिए प्रावधान किया गया था। ण् समझौते में खपत की परवाह किए बिना पानी की सहमत मात्रा की लागत का 70 प्रतिशत भुगतान करने का भी प्रावधान था। 1982 में, प्रतिवादी नंबर 1 ने 4068/- रुपये की राशि के गैर-उपयोग शुल्क की मांग की, जिसे अपीलकर्ता ने जमा कर दिया। कुछ समय बाद, प्रतिवादी नंबर 1 ने जल शुल्क के लिए 2,69,895/- रुपये की मांग की। अगले 10 वर्षों तक पार्टियों ने जल शुल्क लगाने आदि के मुद्दे पर लंबा पत्राचार किया। अंत में, प्रतिवादी नंबर 1 ने दिनांक 13.1.1996 को बिल जारी किया, जिसमें अपीलकर्ता को जल शुल्क के लिए 22,96,207/- रुपये का भुगतान करने की आवश्यकता थी। अपीलकर्ता ने इसे 2001 के विशेष सिविल वाद संख्या 32 में चुनौती दी। विचारण न्यायालय द्वारा जारी किए

गए समन प्रतिवादियों को विधिवत दिए गए थे, लेकिन वाद में निहित कथनों का खंडन करने के लिए उनकी ओर से कोई लिखित कथन दायर नहीं किया गया था और इस तथ्य के बावजूद कि मामला एक से अधिक बार स्थगित किया गया था, सुनवाई की तारीखों पर कोई भी उपस्थित नहीं हुआ। अवसरण् अंततः 30.10.2004 को मुकदमे का फैसला सुनाया गया और यह घोषित किया गया कि अपीलकर्ता 1978 और 16.4.2001 के बीच की अवधि के लिए और उसके बाद, पानी के लिए न्यूनतम शुल्क के रूप में 22,96,207/- रुपये का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी नहीं है। जब तक प्रतिवादी नंबर 1 आपूर्ति नहीं करता। कुछ महीनों के बादए अपीलकर्ता ने एक और मुकदमा दायर किया जो 2005 के सिविल सूट नंबर 222 के रूप में पंजीकृत था और प्रार्थना की कि प्रतिवादी नंबर 1 को उसके पक्ष में अनापत्ति प्रमाण पत्र जारी करने का निर्देश दिया जाए। दूसरे मुकदमे का समन भी उत्तरदाताओं को दिया गया, लेकिन न तो लिखित कथन दाखिल किया गया और न ही उनकी ओर से कोई उपस्थित हुआ। दूसरे मुकदमे पर भी 12.12.2007 को फैसला सुनाया गया और प्रतिवादी नंबर 1 को अपीलकर्ता को अनापत्ति प्रमाण पत्र जारी करने का निर्देश दिया गया। दूसरे वाद में पारित डिक्री के अनुपालन में निगम के संबंधित प्राधिकारी ने दिनांक 9.7.2008 को अदेयता प्रमाण पत्र जारी किया।

4. दूसरे मुकदमे में पारित डिक्री को आगे बढ़ाने में कार्रवाई करने के चार महीने और पंद्रह दिनों के बादए उत्तरदाताओं ने दिनांक 30.10.2004

को 2001 के विशेष सिविल सूट संख्या 32 में पारित फैसले और डिक्री के खिलाफ अपील दायर की। उन्होंने निम्नलिखित दावे करके देरी की माफी के लिए परिसीमा अधिनियम की धारा 5 सपठित सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 41 नियम 3 ए के तहत एक आवेदन भी दायर किया।

> "1. यह अपील 30.10.2004 को पारित विद्वान सिविल जज (एसडी), गांधीनगर के फैसले और डिक्री के खिलाफ दायर की गई है। यह मुकदमा स्थायी निषेधाज्ञा और घोषणा के लिए दायर किया गया था और इस आधार पर कि जीआईडीसी के वकील ने उपस्थित हुए लेकिन कोई लिखित कथन दायर नहीं किया गया और इसलिए, विद्वान न्यायाधीश ने सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 8 नियम 11 का सहारा लिया और वादपत्र में प्रार्थना के अनुसार घोषणा को मंजूरी दे दी। डिक्री पारित होने के बाद, वर्तमान वादी ने 2005 का सिविल सूट नंबर 222 दायर किया और जिसमें 12.12.2007 को डिक्री पारित की गई। उस विशेष डिक्री को इस माननीय न्यायालय के समक्ष चुनौती दी जानी है और इसलिए, 2008 में, दूसरी डिक्री पारित होने के बाद, इसे कानूनी विभाग के साथ-साथ जीआईडीसी, अंकलेश्वर के कार्यकारी अभियंता के ध्यान में लाया गया कि यह कैसे हुआ हुआ है और ऐसा लगता है कई तबादलों के साथ-साथ

यह भी संभव है कि पक्षकार ने व्यवस्था की हो या निगम के कुछ कर्मचारियों के साथ हाथ मिला लिया हो और इस प्रकार वकील को नियुक्त करने के बाद, कोई भी निकाय निर्देश देने या लिखित कथन दाखिल करने के उद्देश्य से वकील के पास नहीं गया है और इसके परिणामस्वरूप, डिक्री पारित की गई है और केवल जनवरी / फरवरी के महीने में, कानून विभाग को पता चला और इसलिए, एक जांच की गई मामले में लेकिन जीआईडीसी यह पता नहीं लगा सकी कि गलती या शरारत किसके हाथों हुई थी। हालाँकि, जब पूछताछ के बाद सब कुछ देखा गया और इसलिए, प्रमाणित प्रतिलिपि के लिए आवेदन 17.11.2008 को किया गया था और 18.11.2008 को प्रतिलिपि तैयार हो गई थी और उसे वकील को भेज दिया गया था और उसके बाद वर्तमान अपील को प्राथमिकता दी गई है।

2. 30.10.2004 से 18.11.2008 तक की लंबी अवधि, व्यावहारिक रूप से चार साल का समय बीत चुका है और यह केवल कर्मचारियों की ओर से कुछ गलती या शरारत के कारण हुआ है और इसलिए, अपील नहीं की जा सकी, अन्यथा यह जीआईडीसी के सारभूत अधिकार का एक प्रकरण है जहां पानी का उपयोग होने या न होने के बावजूद

पानी का शुल्क लगाया जाता है और जब बिल पहले ही निकाले जा चुके हैं, तो जीआईडीसी की ओर से मुकदमा लड़ने का ऐसा कोई इरादा नहीं था। लेकिन यह पता लगाना मुश्किल है कि यह कैसे हुआ और इसलिए, जब विस्तार से जांच की गई, तथ्यों को सामने लाया गया और उस आधार पर यह अपील दायर करने का कारण उत्पन्न हुआ और अपील दायर करने में हुई 1067 दिनों की देरी को न्याय के हित में माफ किया जाना आवश्यक है।"

नोटिस पर, अपीलकर्ता की ओर से इसके निदेशक, श्री संजय कांतिलाल शाह के हलफनामे के रूप में एक विस्तृत उत्तर दायर किया गया, पैराग्राफ 4.16, 5 और 6, जो इस प्रकार हैं;-

"4.16 अपीलकर्ता द्वारा की गई पहली अपील 2008 के सिविल आवेदन संख्या 14201 के साथ की गई है और परिसीमा अधिनियम की धारा 5 सपठित आदेश 41 नियम (3 ए) के तहत देरी की माफी के लिए उक्त आवेदन प्रस्तुत किया गया है। वास्तव में, याचिकाकर्ता कंपनी एक सरकारी निगम होने के नाते नियमों और विनियमों का पालन करने के लिए बाध्य है और वह खुद को कानून के प्रावधानों से अलग नहीं कर सकती है। वस्तुतः वर्तमान प्रथम अपील

दाखिल करने में 4 वर्ष से अधिक का विलम्ब हुआ है। इसके अलावा, दूसरे मुकदमे में, डिक्री और निर्णय पहले ही पारित हो चुका है और उसके बाद अब याचिकाकर्ता को सिविल सूट संख्या 32/2001 के आदेश को चुनौती देने का कोई अधिकार नहीं है। लेकिन अपीलकर्ता को सबसे अच्छे से ज्ञात कारणों से विलंब माफी आवेदन में दिनों की सही संख्या का उल्लेख नहीं किया गया है। वास्तव में, एक सरकारी निगम होने के नाते याचिकाकर्ता को नियमों और विनियमों का सख्ती से पालन करना होगा और उचित स्पष्टीकरण देना होगा कि समय सीमा के भीतर अपील क्यों नहीं की गई और यदि ऐसा था, तो इससे व्यथित होकर आदेश विद्वान सिविल जज (एसडी) गांधीनगर द्वारा पारित आदेश में यदि देरी की माफी को ध्यान में रखा जाए तो उक्त पृष्ठ केवल 4 पृष्ठों का है, जिसमें याचिकाकर्ता पिछले वर्ष क्या कर रहा था, इसका कोई उचित स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है और इस प्रकार उक्त आवेदन को भी खारिज किया जाना आवश्यक है।

5. सिविल आवेदन के पैरा -1 के संबंध मेंए मैं अत्यंत विनम्रतापूर्वक और सम्मानपूर्वक प्रस्तुत करता हूं कि यह सच है कि विद्वान सिविल जज (एस. डी.) गांधीनगर द्वारा

दिनांक 13.10.2004 को डिक्री पारित की गई थी, यह भी सच है कि उक्त मुकदमे में, जीआईडीसी के वकील उपस्थित हुए थे लेकिन उन्होंने लिखित कथन दाखिल नहीं किया था और इसलिए, विद्वान न्यायाधीश ने सिविल प्रक्रिया संहिता के प्रावधानों के तहत आदेश पारित किया है और वादपत्र में प्रार्थना के अनुसार घोषणा दी है। यह भी सच है कि डिक्री पारित होने के बाद, वर्तमान प्रतिवादी ने एक और मुकदमा सिविल सूट संख्या 222/2005 दायर किया और उक्त डिक्री 12.12.2007 को पारित की गई। यह सत्य नहीं है कि वर्ष 2008 में दूसरी डिक्री पारित होने के बाद विधि विभाग को यह जानकारी दी गई कि पहले वाली डिक्री को चुनौती देना आवश्यक है। कानूनी ज्ञान की कमी को देरी को माफ करने का आधार नहीं कहा जा सकता। यदि समय रहते तथ्य सामने नहीं लाए गए होते तो उक्त के लिए यह नहीं कहा जा सकता कि प्रतिवादी कंपनी को दंडित किया जाना आवश्यक है। दरअसल शपथ पत्र में इस बात का कुछ भी उल्लेख नहीं किया गया है कि किसने उचित जानकारी निर्देश नहीं दिये या संभवतः किसने शरारत की थी और प्रतिवादी कंपनी के साथ किसने हाथ मिलाया था। यह केवल आरोप-प्रत्यारोप का खेल है जो खेला जा रहा है और अपनी जान को बचाने के लिए आरोप लगाए जा रहे हैं लेकिन

इसमें उल्लिखित तथ्यों के पीछे कोई सच्चाई नहीं है और इस प्रकार कोई रास्ता नहीं है कि वर्तमान आवेदन को कैसे अनुमति दी जा सकती है। इसके अलावा प्रतिवादी जी.एल.डी.सी. के किसी भी व्यक्ति को नहीं जानता है। (आज या किसी भी समय)

6. सिविल आवेदन के पैरा - 2 के संबंध मेंए मैं अत्यंत विनम्रतापूर्वक और सम्मानपूर्वक कहता हूं और प्रस्तुत करता हूं कि यह सच है कि डिक्री की तारीख से 4 साल से अधिक का समय बीत चुका है लेकिन किसने शरारत या गलती की है या क्या इसे जानबूझकर समय सीमा के भीतर दायर किया गया थाए जो कि अपीलकर्ता निगम को सबसे अच्छी तरह से ज्ञात कारणों से पता है और यह कुछ ऐसा है जिस पर याचिकाकर्ता कंपनी इस समय टिप्पणी नहीं करना चाहेगी। कोई उचित औचित्य या स्पष्टीकरण नहीं लाया गया है पिछले 4 वर्षों से जो कुछ हो रहा थाए उसे रिकॉर्ड करें इसमें कुछ भी विस्तार से नहीं दिया गया है और न ही सही और सही तथ्यों का उल्लेख किया गया है और न ही दिनों के संबंध में गणना ठीक से की गई है और इस प्रकार सभी उक्त बिंदुओं परए वर्तमान आवेदन को अनुकरणीय लागत के साथ खारिज करने की आवश्यकता है।"

5. हाई कोर्ट की डिवीजन बेंच ने बिहार राज्य और अन्य बनाम कमलेश्वर प्रसाद सिंह और अन्य, 2000 एआईआर एससी 2388, एन. बालाकृष्णन बनाम एम. कृष्णमूर्ति, जेटी 1998 (6) एससी 242, हरियाणा राज्य बनाम चंद्र मणि और अन्य एआईआर में इस न्यायालय के निर्णय 1996 एससी 1623, विशेष तहसीलदार, भूमि अधिग्रहण, केरल बनाम के. वी. सी अयिसुम्मा एआईआर 1996 एससी 2750, पंजाब लघु उद्योग और निर्यात निगम लिमिटेड और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य 1995 सप्लीमेन्ट्री (4) एससीसी 681, पी. के. रामचन्द्रन बनाम केरल राज्य और अन्य (1997) 7 एससीसी 566 और कलेक्टरए भूमि अधिग्रहण, अनंतनाग बनाम एमएसटी। कातिजी अल आर 1987 एससी 1353 का हवाला दिया और एक गुप्त अवलोकन करके देरी को माफ कर दिया कि उत्तरदाताओं द्वारा दिखाया गया कारण पर्याप्त है। उच्च न्यायालय के आदेश का प्रासंगिक भाग नीचे पुन; प्रस्तुत किया गया है-

> " सुप्रीम कोर्ट द्वारा निर्धारित सिद्धांतों को वर्तमान मामले के तथ्यों पर लागू करते हुए, हम संतुष्ट हैं कि आवेदक द्वारा देरी को माफ करने के लिए पर्याप्त कारण बताया गया है। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि इस आवेदन में उल्लिखित कारण दूसरे पक्ष द्वारा विवादित नहीं किया गया

है और परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 5 के तहत शक्ति के विवेकाधीन प्रयोग को नियंत्रित करने वाले सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए भी, हमारा मत है कि अपील दाखिल न करने के लिए पर्याप्त कारण बताया गया है इसलिए अपील दायर करने में देरी हुई है माफ किया जाना चाहिए और आवेदन स्वीकार करना आवश्यक है - स्वीकार किया गया। "

(जोर दिया गया)

6. श्री एल. एन. राव अपीलकर्ता की ओर से पेश विद्वान वरिष्ठ वकील राव ने तर्क दिया कि विवादित आदेश रद्द किया जा सकता है क्योंकि उच्च न्यायालय ने गलती से यह मानते हुए देरी की माफी के लिए आवेदन की अनुमति दे दी कि देरी केवल 1067 दिनों की थी। विद्वान वरिष्ठ वकील ने बताया कि 30.10.2004 के फैसले और डिक्री के खिलाफ अपील 24.11.2008 को यानी चार साल से अधिक समय के बाद दायर की गई थी, लेकिन पैराग्राफ 2 और 3 में "4 साल और 28" के आंकड़ों और शब्दों को हटा दिया गया था। आवेदन और इसे अंक "1067" से प्रतिस्थापित करते हुए, उत्तरदाताओं ने यह विश्वास करके उच्च न्यायालय को गुमराह किया कि देरी 1067 दिनों की थी। इसके बाद उन्होंने यह दिखाने के लिए श्री संजय कांतिलाल शाह के दिनांक 16.2.2009 के हलफनामे का हवाला दिया कि चार साल से अधिक की देरी की माफी के लिए उत्तरदाताओं की

प्रार्थना का विरोध करने के लिए अपीलकर्ता की ओर से पर्याप्त आधार सामने रखे गए थे और प्रस्तुत किया गया था कि डिवीजन बेंच उच्च न्यायालय ने यह मानकर देरी को माफ करने में गंभीर गलती की कि अपीलकर्ता द्वारा कोई जवाब दाखिल नहीं किया गया था। विद्वान वरिष्ठ वकील ने उत्तरदाताओं की ओर से इस न्यायालय में दायर क्रमशः श्री प्रवीण केशव लाल मोदी और श्री हरीशभाई पटेल के दिनांक 25.11.2009 और 4.2.2010 के हलफनामे और दूसरे हलफनामे के साथ संलग्न घटनाओं की सूची पर भी न्यायालय का ध्यान आकर्षित किया। यह दर्शाता है कि प्रतिवादी नंबर 1 के पदाधिकारी 2001 के विशेष सिविल सूट नंबर 32 और 2005 के सिविल सूट नंबर 222 की कार्यवाही से बहुत परिचित थे और प्रस्तुत किया गया कि उच्च न्यायालय को देरी की माफी के लिए आवेदन में निहित स्पष्ट रूप से गलत दावों को स्वीकार नहीं करना चाहिए था, जिसे किसी और के नहीं बल्कि प्रतिवादी नंबर 1 के महाप्रबंधक, श्री आर. बी. जाडेजा के हलफनामे द्वारा समर्थित किया गया था, कि विशेष सिविल वाद संख्या 32 / 2001 के फैसले के बारे में कानूनी विभाग को केवल जनवरी / फरवरी, 2008 में ध्यान में आया था।

7. उत्तरदाताओं के विद्वान वकील श्री अनिप सचथे ने निष्पक्ष रूप से स्वीकार किया कि अपील दिनांक 30.10.2004 के फैसले के चार साल से अधिक समय बीत जाने के बाद दायर की गई थी, लेकिन उन्होंने कहा कि इस न्यायालय को उच्च न्यायालय द्वारा इस्तेमाल किए गए विवेक के साथ

हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। देरी और उत्तरदाताओं को केवल इसलिए दंडित नहीं किया जाना चाहिए। निगम द्वारा नियुक्त अधिवक्ताओं ने लिखित कथन दाखिल करने और सुनवाई की तारीखों पर विचारण न्यायालय के समक्ष उपस्थित होने की जहमत नहीं उठाई। विद्वान वकील ने उस बात पर जोर दिया कि इस न्यायालय ने उस प्रक्रिया को अपनाना उचित नहीं समझाए क्योंकि उत्तरदाता ने साफ हाथों से उच्च न्यायालय के समक्ष नहीं आए।

11. श्री हरीशभाई पटेल के हलफनामे के साथ संलग्न घटनाओं की सूची वाले बयान से पता चलता है कि मुकदमा दायर करने से पहले, अपीलकर्ता ने दिनांक 5.2.2001 को नोटिस जारी किया था, जिस पर प्रतिवादी नंबर 1 ने दिनांक 13.3.2001 को उत्तर भेजा था। अपीलकर्ता द्वारा स्थापित विशेष सिविल सूट संख्या 32/2001 के सम्मन अप्रैल / मई 2001 के महीने में उत्तरदाताओं को दिए गए थे। 16.5.2001 को, महाप्रबंधक (कानून) ने सुश्री रेखाबेन एम. पटेल को उपस्थित होने का निर्देश दिया था। उत्तरदाताओं की ओर से उप कार्यकारी अभियंता, अंकलेश्वर को जवाबी हलफनामा तैयार करने के लिए वकील से संपर्क करने का भी निर्देश दिया गया। 23.5.2001 को, उप कार्यकारी अभियंता, अंकलेश्वर ने टिप्पणियाँ सुश्री रेखाबेन एम. पटेल को भेज दीं। 18.4.2002 को, अपीलकर्ता ने उत्तरदाताओं के खिलाफ एक पक्षीय कार्यवाही के लिए एक आवेदन दायर किया। 30.11.2002 को, विचारण न्यायालय ने उत्तरदाताओं को 12.12.2002 को इस संकेत के साथ उपस्थित होने का निर्देश दिया कि

यदि वे ऐसा करने में विफल रहते हैं, तो एक पक्षीय कार्यवाही आयोजित की जाएगी। इसके बाद, महाप्रबंधक (कानून) ने सुनवाई की अगली तारीख यानी 12.12.2002 को उपस्थित रहने के लिए सुश्री रेखाबेन को दिनांक 10.12.2002 को पत्र लिखा। 30 दिसंबर, 2002 को उप कार्यकारी अभियंता, अंकलेश्वर ने पैरा-वार टिप्पणियाँ प्रस्तुत करने के मामले में वकील को लिखा। बताया जाता है कि 2.1.2003 को कार्यकारी अभियंता ने वकील को एक पत्र भेजकर सुनवाई की अगली तारीख के बारे में सूचित किया था। 10.1.2003 और पूछा उसे उपस्थित रहना है लगभग एक वर्ष और दस महीने के बाद, विचारण न्यायालय ने एक पक्षीय फैसला सुनाया और मुकदमे पर फैसला सुनाया। दूसरे मुकदमे का सम्मन मई, 2005 में किसी समय प्राप्त हुआ। 20.6.2005 को, श्री बी. आर. शर्मा- अधिवक्ता को प्रतिवादियों की ओर से उपस्थित होने का निर्देश दिया गया। 10.1.2006 कोए उप कार्यकारी अभियंता, अंकलेश्वर ने नए वकील को सुनवाई की अगली तारीख के बारे में सूचित किया जो 23.1.2006 थी। दूसरे मुकदमे का फैसला 12.12.2007 को हुआ।

12. सुनवाई के दौरान, विद्वान वकील उत्तरदाताओं ने स्पष्ट रूप से स्वीकार किया कि अपीलकर्ता द्वारा दायर दूसरे मुकदमे में डिक्री दिनांक 30.10.2004 का विशेष उल्लेख था जो विशेष सिविल वाद संख्या 32/2001 में पारित किया गया। उन्होंने यह भी स्वीकार किया कि भले ही पहला मुकदमा विचारण न्यायालय के समक्ष तीन साल और पांच महीने

तक लंबित रहा और दूसरा मुकदमा दो साल से अधिक समय तक लंबित रहा, लेकिन प्रतिवादी नंबर 1 के कानून विभाग या इंजीनियरिंग विभाग का कोई भी अधिकारी नहीं था। जो न्यायालय के समक्ष उपस्थित हुए।

13. हमने ऊपर जो नोट किया है, उससे यह स्पष्ट है कि प्रतिवादी नंबर 1 का कानून विभाग पहले और दूसरे मुकदमे की कार्यवाही से अच्छी तरह वाकिफ था। पहले मामले में, सुश्री रेखाबेन एम. पटेल को नियुक्त किया गया था एवं दूसरे मामले में श्री बी. आर. शर्मा, को उत्तरदाताओं की ओर से उपस्थित होने का निर्देश दिया गया, लेकिन ऐसा नहीं दिखाया गया है कि किसी भी अधिकारी ने लिखित कथन दाखिल करने और मामले की तैयारी के लिए किसी भी वकील से व्यक्तिगत रूप से संपर्क किया हो और किसी ने भी विचारण न्यायालय के सामने पेश होने की जहमत नहीं उठाई। यह आश्चर्य की बात है कि भले ही महाप्रबंधक (कानून) रैंक के एक अधिकारी ने मई 2001 में ही सुश्री रेखाबेन एम. पटेल को उपस्थित होने और वकालत दाखिल करने के निर्देश जारी किए थे और प्रबंधक (कानून) ने उन्हें वकालत दे दी थी। श्री बी. आर. शर्मा, अधिवक्ता द्वारा मई 2005 में विलंब माफी के लिए दायर आवेदन में प्रतिवादियों ने साहसपूर्वक कहा कि विधि विभाग को एक पक्षीय डिक्री के बारे में जनवरी / फरवरी 2008 में ही पता चला। उत्तरदाताओं ने यहां तक सुझाव दिया कि पार्टियों ने निगम के किसी कर्मचारी के साथ व्यवस्था कर ली होगी या हाथ मिलाया होगा और यही कारण हो सकता है कि अधिवक्ताओं को शामिल करने के

बाद भी किसी ने भी लिखित कथन दाखिल करने और उचित जानकारी देने के निर्देश देने के उद्देश्य से उनसे संपर्क नहीं किया। निर्देश जिसके परिणामस्वरूप एक पक्षीय आदेश पारित किया गया। हमारे विचार में आवेदन के पैरा 1 में निहित उपरोक्त कथन न केवल गलत है, बल्कि प्रथम दृष्टया झुठा है और उच्च न्यायालय ने (परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के अंतर्गत विवेकाधिकार का) न्यायिक रूप से स्वीकृत मापदंडों की अनदेखी करते हुए अपील दायर करने में चार साल से अधिक की देरी को माफ करके गंभीर त्रुटि की है।

14. परिणामस्वरूप, अपील स्वीकार की जाती है। उच्च न्यायालय के आक्षेपित आदेश को निरस्त किया जाता है और आवेदन किया जाता है उत्तरदाताओं द्वारा दायर विलंब क्षमा के आवेदन को खारिज किया जाता है। परिणाम स्वरूप उत्तरदाताओं द्वारा निर्णय एवं डिक्री दिनांक 30.10.2004 के विरूद्ध दायर अपील को समयबाधित मानकर खारिज किया जाता है। हालाँकि, यह स्पष्ट किया जाता है कि इस अपील का निपटान प्रतिवादी नंबर 1 के उच्च पदाधिकारियों को मामले की गहन जांच करने की जिम्मेदारी से मुक्त नहीं करेगा ताकि दोषी अधिकारियों / कर्मचारियों की जवाबदेही तय की जा सके और नुकसान यदि कोई हो, जो उत्तरदाता नं. 1 को हुआ हो तो प्राकृतिक न्याय के नियमों का पालन करने के बाद उनसे वसूल किया जावे।

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल 'सुवास' की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी मुकेश चावला (आर.जे.एस.) द्वारा किया गया है।

अस्वीकरण: यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और अधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।